ईरान में अंधेरे के चालीस साल

ब्रेट स्टीफेंस

© The New York Times 2019

विगत चालीस साल में ईरान ने देश में और देश से बाहर भी अपनी कट्टरवादी गतिविधियां जारी रखीं। लेकिन यह अद्भुत विरोधाभास है कि अमेरिका समेत पश्चिम ने उसकी वैसी निंदा नहीं की। ईरान को पटरी पर लाने के लिए सैन्य कार्रवाई की नहीं, बल्कि आर्थिक प्रतिबंध की ही जरूरत है, ताकि वह अपने कट्टरवादी तौर-तरीकों से बाहर निकले।

चालीस साल पहले इसी महीने ईरान में इस्लामी क्रांति हुई थी। यह अद्भुत है कि तब से लेकर आज तक ईरान के नेताओं के बारे में पश्चिम की तरफ से लगातार ऐसी टिप्पणियां की गई हैं, जिन्हें संदेह का लाभ ही कहा जा सकता है। ईरान के इन नेताओं की गलत नीतियों की पश्चिम ने वैसी निंदा नहीं की, जैसी अपेक्षित थी। प्रिंस्टन के रिचर्ड फॉक ने द *न्यूयॉर्क टाइम्स* के 16 फरवरी, 1979 के अंक में लिखा था, 'यह अच्छा ही हुआ कि अयातुल्लाह खुमैनी को कट्टर, प्रतिक्रियावादी और अशिष्ट पूर्वाग्रहवादी के रूप में पेश करना गलत साबित हुआ। अहिंसक तौर-तरीकों के आधार पर क्रांति का एक नया मॉडल पेश कर ईरान ने मानवीय स्वरूप वाली सरकार का एक ऐसा मॉडल सामने रखा है, जिसकी तीसरी दुनिया के देशों को बहुत जरूरत है।'

उसके एक दशक बाद निरंकुश आतंक की सत्ता का सिलसिला सलमान रुश्दी के खिलाफ फतवे और 1988 में हजारों राजनीतिक कैदियों की सामूहिक हत्या तक चला, जिनमें बच्चे भी थे। उसके बाद ईरान में एक और नई सुबह की बात कही गई, जो कि झूठ थी। खुमैनी की मृत्यु के बाद अली अकबर हाशमी रफसंजानी ईरान के राष्ट्रपति बने। उन्हें उदारवादी बताया गया। जबकि वह भ्रष्ट और शोषक थे, जिन्होंने ब्यूनस आयर्स से लेकर बर्लिन तक बमबारी और हत्याओं का अभियान चलाया। रफसंजानी के उत्तराधिकारी मोहम्मद खातमी को आधुनिकतावादी बताया गया। लेकिन उनके समय में ही 1999 में छात्रों के विरोध प्रदर्शन पर बर्बर हमला किया गया और उन्होंने परमाणु हथियार बनाने का एक कार्यक्रम भी चलाया, जो गोपनीय और गैरकानूनी था।

हां, मोहम्मद अहमदीनेजाद के बारे में यह जरूर कह सकते हैं कि ईरान के इस नेता को वैश्विक स्तर पर कम सहानुभूति मिली। हालांकि उनके दौर में पश्चिमी रिपोर्टरों ने ईरान के कथित खुलेपन की भूरि-भूरि प्रशंसा की-जबकि अहमदीनेजाद की सत्ता ने विपक्षी ग्रीन मूवमेंट को निर्ममता से कुचलकर 2009 के चुनाव में अनैतिक तरीके से जीत हासिल की थी।

उसके बाद ईरान की सत्ता हसन रोहानी के पास गई। पश्चिम के नेताओं को लगा कि रोहानी के साथ काम किया जा सकता है। उन्होंने उनके साथ परमाणु समझौता किया भी-लेकिन बाद में अमेरिका के ट्रंप प्रशासन

ने इस समझौते को रद्द कर दिया। इसके बावजूद ईरान के प्रति सद्भावना की बयार बहती रही। वर्ष 2015 में ईरान की सरकार ने लगभग 1,000 लोगों को मौत की सजा दी, जो कि 2010 के आंकड़े से दोगुनी थी। पिछले ही महीने ईरान की सरकार ने एक व्यक्ति को चोरी के आरोप में सरेआम फांसी की सजा दी-वह व्यक्ति समलैंगिक भी था। आंकड़े बताते हैं कि ईरान में अब तक पांच हजार समलैंगिकों और लेस्बियनों की हत्या की जा चुकी है।

सिर्फ पश्चिम एशिया में नहीं, ईरान और उसके गुर्गे दुनिया में वैश्विक स्तर पर हिंसा फैलाने के अपने काम में निरंतर लगे हुए हैं। पिछली ही गर्मियों में पेरिस में एक विपक्षी समूह पर बमबारी करने के ईरान के प्रयास को विफल कर दिया गया। डेनमार्क में ईरानियों द्वारा सुनियोजित हत्या की एक और कोशिश के बाद विगत अक्तूबर में कोपेनहेगन ने तेहरान से अपने राजदूत को वापस बुला लिया। ईरान के महान एयर के विमानों में हथियार ले जाकर सीरिया में हिंसा फैलाने की खबर आने के बाद पिछले ही महीने जर्मनी ने इस एयरलाइन को प्रतिबंधित कर दिया। जर्मन खुफिया अधिकारियों का तो यहां तक कहना है कि पश्चिम से परमाणु समझौता करने के बाद ईरान ने 2016 में चोरी-छिपे परमाणु सामग्री हासिल करने की कोशिश की थी। ये वे देश हैं, जो ईरान के साथ बेहतर रिश्ते के आकांक्षी रहे हैं और जिन्होंने ट्रंप प्रशासन से अलग रवैया अपनाया। लेकिन इस मामले में तेहरान का रुख धोखेबाजी का ही रहा है।

डोनाल्ड ट्रंप की विदेश नीति शर्मनाक रही है, लेकिन कई मामलों में उनकी सख्त नीति की प्रशंसा होनी चाहिए : सीरिया से अमेरिकी फौज की वापसी का फैसला बेशक बहुत बड़ी गलती था, जहां रहकर अमेरिकी फौज ईरान के खूनी इरादे को बेअसर कर सकती थी, लेकिन ईरान के मामले में ट्रंप की सख्त नीति सही ही रही है। यह ध्यान देने लायक है कि ईरान के साथ हुए परमाणु समझौते से अमेरिका के बाहर निकल जाने के बाद तेहरान ने अपने परमाणु कार्यक्रम को फिर से शुरू करने की कोशिश नहीं की। यह अमेरिकी सख्ती का ही नतीजा है कि ईरान ने फारस की खाड़ी में अमेरिकी नौसेना के जहाजों को रोककर परेशान करने का काम बंद कर दिया। ईरान पर फिर से लगे प्रतिबंध ने उसे गहरे आर्थिक संकट में भी डाल दिया। ईरान को सबक सिखाने का मतलब यह नहीं है कि उसके खिलाफ सैन्य कार्रवाई की जाए। लेकिन आर्थिक प्रतिबंधों के जरिये उसके नेतृत्व पर यह दबाव तो बनाया ही जा सकता है कि वह अपनी कट्टरवादी महत्वाकांक्षा और जनता की आकांक्षाओं के बीच संतुलन कायम करे। कूटनीतिक दबाव बनाकर उसे अपने नागरिकों के साथ सभ्य तरीके से पेश आने के लिए तो कहा ही जा सकता है। महिलाओं और राजनीतिक कैदियों के साथ वहां जो सुलूक होता है, उसके खिलाफ और मानवाधिकार के पक्ष में अभियान अगर ईरान को बदल पाए, तो इससे अच्छा कुछ नहीं होगा।

भारतीय कला-संस्कृति को कैसे देखें

गौतम चटर्जी

भारत ने पिछले तीन हजार साल में जितने तरह के दौर और शासन देखे हैं, दुनिया के किसी देश ने नहीं देखे। लेकिन नई सदी के इधर के दौर में अपनी कला और संस्कृति को देखने का जैसा रवैया पनपा है, उसे देखकर लगता है कि भारतीय संस्कृति मानो कोई अबूझ पहेली हो और उस पर कुछ भी वक्तव्य देने से पहेली को बूझना आ जाता हो। भारतीय कला और संस्कृति पर कही गई बातें यदि हम याद कर सकें, तो पाएंगे कि हमने अभी तक तय नहीं किया कि हम अपने इतिहास और समय को कैसे देखें, कला में व्यक्त उस इतिहास और समय के बारे में अपनी समझ कैसे विकसित करें और उस समझ की समीक्षा हम कैसे करें कि 21वीं सदी में देश का सचमुच कोई आधुनिक, संपूर्ण और सर्वजनसुखाय स्वरूप उभर कर सामने आ जाए, जिसका स्वीकार और सम्मान सभी भारतीय मन का गर्व हो और विश्व चेतना में वह एक सुसंस्कृत देश के रूप में चिह्नित हो, जिसका असर संस्कृति, समाज, राजनीति और अर्थनीति पर भी पड़े।

दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि स्वाधीनता के बाद हमने कभी ध्यान ही नहीं दिया कि देश की संस्कृति और इतिहास को देखने में सभ्य हम कैसे हों, इसकी पूरी व्यवस्था हमारे वैदिक इतिहासकारों ने पहले ही दे रखी है। वैदिक ऋषि महज ऋषि भर नहीं थे। वे ऐसे कवि, विज्ञानी, इतिहासकार और कलाकार थे, जिनकी दृष्टि समय के साथ-साथ समय के पार भी हुआ करती थी। उन्होंने इतिहास और संस्कृति को एक सुव्यवस्थित क्रम में देखने का आधार मनुष्य सभ्यता को बनाया था और सभ्यता का आधार उन्होंने विद्या और ज्ञान को बनाया था। विद्या की देवी की पूजा इसी आशय से कालांतर में विकसित हुई थी। इसी दृष्टि से कालखंडों का निर्धारण किया गया था, जैसे स्मृति काल, उपनिषद काल, शिक्षा काल आदि। हालांकि आज यह बहुत व्यावहारिक नहीं लग सकता है, क्योंकि हम ज्ञान और विद्या के मूल भारतीय स्वरूप से बहुत हट गए हैं। मूल स्वरूप में *महाभारत, सुत्तनिपात* और *नाट्यशास्त्र* जैसे ग्रंथ ही पंचम वेद हुआ करते थे और कलाकार ही इतिहास पुरुष कहलाते थे।

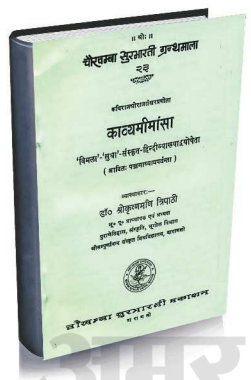

अपनी कला और संस्कृति को देखने का जैसा रवैया हमारे यहां पनपा है, उसे देखकर लगता है कि भारतीय संस्कृति मानो कोई अबूझ पहेली हो, जबकि हमारे ऋषियों ने इतिहास और संस्कृति को एक सुव्यवस्थित क्रम में देखने का आधार मनुष्य सभ्यता को बनाया था।

भारतीय गणतंत्र और लोक चेतना में सत्ता और विपक्ष दरअसल अद्वैत दृष्टि के ही दो पहलू होते थे, ताकि देश की शांति इस बात पर निर्भर करे कि उस देश के लोग कितने सभ्य, शिक्षित और सुसंस्कृत हैं। वे लोग सत्ता की रचना करते थे और सत्ता फिर-फिर देश और अपने समाज की पुनर्रचना करती रहती थी। आज यह भाषा यूटोपिया की भाषा लग सकती है। लेकिन समीक्षा की पूरी बात हमारे स्वाधीन देश में साहित्य और कला तक आकर सीमित हो गई है। हमने इस ओर ध्यान नहीं दिया कि गैर भारतीय देशों के संस्कार में किसी ग्रंथ की व्याख्या कमेंटरी है, लेकिन हमारे यहां इसके लिए एक नहीं, बल्कि छह तरीकों की व्यवस्था बनाई गई है, जैसे वृत्ति, टीका, भाष्य आदि। राजशेखर ने अपनी *काव्यमीमांसा* में छह प्रकार की कमेंटरी की विधिवत व्यवस्था दे रखी है। साहित्य और कलाओं में समीक्षा दृष्टि या समालोचना का स्तर आजाद भारत में कैसा रहा, इसे यदि इस मूल भारतीय ऋषि दृष्टि से देखें, तो आसानी से दिख जाएगा कि समीक्षा अभी आरंभ ही नहीं हुई है।

हिंदी साहित्य में समीक्षा या आलोचना के नाम पर काफी कुछ लिखा गया है। प्रेमचंद के साहित्य पर ही पिछले करीब सत्तर साल और स्वयं प्रेमचंद के समय में भी काफी कुछ लिखा गया है। लेकिन वह लिखना परवर्ती समय में एक भी ऐसी रचना नहीं दे सका है, जो प्रेमचंद की कोटि की एक कहानी भारतीय पाठक मानस को उपहारस्वरूप दे सके। देश को एक स्वस्थ सत्ता कैसे मिल सकती है भला! भारतीय कलाओं की समीक्षा का हाल और भी निराशापूर्ण, क्षुब्ध और इकहरा है। लगता है कि आजाद भारत में रंगमंच, सिनेमा, संगीत या चित्रकला की समीक्षा हुई ही नहीं। हिंदी में संगीत समीक्षा के नाम पर प्रायः ऐसा कुछ प्रकाशित होता रहा कि संगीत साधक अपनी संगीत प्रस्तुति के अगले दिन ऐसी कोई भी प्रकाशित सामग्री लेकर अपने शहर लौट सकने की स्थिति में नहीं आ सके, जो किसी को दिखाने लायक हो। हां मूर्ख कलाविदों की अहंमन्यता मुखर होती चली गई। उन्होंने कभी इस ओर ध्यान नहीं दिलाया कि पं. हरिशंकर मिश्र के बाद कभी बनारस में ध्रुपद गायन पनपा ही नहीं, जबकि बनारस एकमात्र शहर है, जहां इस विशेष शास्त्रीय शैली का वार्षिक मेला पिछले चवालीस साल से होता चला आ रहा।

रंगमंच की भी ऐसी समीक्षाएं आती रहीं कि हिंदी के रंगकर्मी के लिए यह देखना दुष्कर हो गया कि वे आगे नहीं बढ़ रहे, पीछे छूट रहे। सिनेमा के बारे में तो राज्यसभा टीवी के *गुफ्तगू* कार्यक्रम की सौवीं कड़ी में जया बच्चन को कहना पड़ा कि हिंदी में फिल्म समीक्षक ही नहीं हैं। उन्होंने कहा कि हमें ऐसे फिल्म समीक्षकों की जरूरत है, जिन्हें फिल्म के तकनीकी पक्षों की जानकारी हो, ऐसे समीक्षक जो हमें भी सिखाएं। दरअसल वह कहना चाहती थीं कि फिल्म भाषा की समझ रखने वाले समीक्षकों की कमी है, जरूरत है। समाधान बहुत आसान है। पंचमवैदिक ऋषि ने अपने ग्रंथ के सिद्धि अध्याय में वर्णित चार कारिकाओं में समीक्षकों के गुण बताए हैं, और यह भी कि यह यानी समीक्षा नाट्य या संगीत परिवेश का ही तीसरा रूप हो सकता है, जो संगीत साधक को उन्नत करेगा। संगीत समीक्षक यदि संगीत समाज स्वयं नहीं बनाता और स्तरीय समीक्षा की उम्मीद यदि प्रकाशन जगत से करता है, तो यह ऐसे देश के संस्कार को बताता है, जो संस्कृति और सभ्यता को बहुत पीछे छोड़ आया है।

भारत को लेकर चर्चिल कितने गलत थे

हिटलर और नाजियों को लेकर वह सही थे। लेकिन भारत के बारे में ऐसा नहीं था। वह निर्लज्ज साम्राज्यवादी थे, जो यह मानता था कि भारत कभी एक राष्ट्र नहीं बन सकता और भारतीयों को हमेशा अंग्रेजों का गुलाम रहना चाहिए।

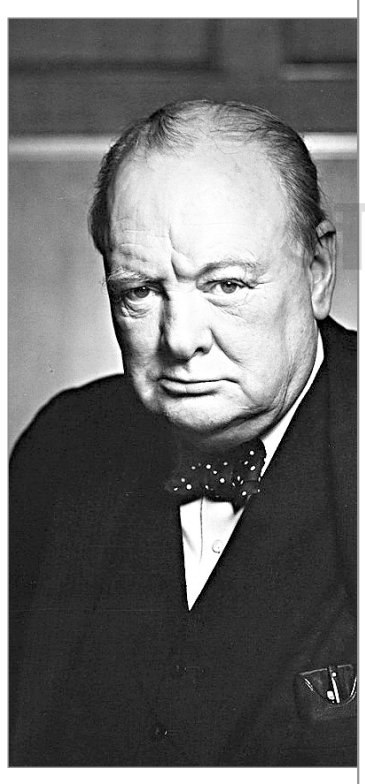

रामचंद्र गुहा

जाने-माने इतिहासकार

इसी महीने कुछ दिन पूर्व ब्रिटेन में उस समय एक विवाद गरमा गया, जब लेबर नेता जॉन मेकडोनेल ने विंस्टन चर्चिल की इस बात को लेकर आलोचना की कि उन्होंने 1910 में कामगारों पर सुरक्षा बलों को फायरिंग के आदेश दिए थे। इस पर उनके राजनीतिक विरोधी बर्बर तरीके से उन पर टूट पड़े। भद्र माने जाने वाले टोरी और चर्चिल के पोते सर निकोलस सोएम्स ने कहा, 'लोगों का ध्यान आकर्षित करने की चाहत में एक सस्ते नेता द्वारा किए गए हमले से मेरे दादा की प्रतिष्ठा पर आंच नहीं आ सकती। मैं नहीं समझता कि इससे दुनिया में कोई हड़कंप मचेगा।'

जहां तक ब्रिटेन की बात है, तो यह बात सही हो सकती है। वहां चर्चिल को आदर दिया जाता है (और जो सही भी है) क्योंकि वह ऐसे समय नाजियों के खिलाफ उठ खड़े हुए थे, जब उनकी पार्टी का कोई सहयोगी इसके लिए तैयार नहीं था। पुलिस फायरिंग में एकांत में हुई एक मौत दूसरे विश्व युद्ध के दौरान अपने देश की रक्षा करने की तुलना में मामूली लगती है। लेकिन चर्चिल की प्रतिष्ठा पर भारत जैसे दूसरे स्थानों में किए गए हमलों पर क्या कहा जाए? भारतीयों के प्रति उनकी अरुचि ('वे जानवर जैसे लोग हैं और उनका धर्म भी पशुओं जैसा है।') गांधी के प्रति उनकी घृणा और भूख से तड़पते बंगाल के किसानों को खाद्य मदद से उनके इनकार के बारे में सब भली-भांति जानते हैं। एक दस्तावेज के आधार पर उनके खिलाफ अभियोग चलाने का मजबूत आधार बनता है, जोकि मुझे हाल ही में आर्किव से मिला।

यह एक छह पेज का ज्ञापन है, जिसे चर्चिल ने सितंबर, 1932 में ब्रिटिश संसद की भारतीय सांविधानिक सुधारों से संबंधित संयुक्त समिति के लिए तैयार किया था। इसमें उन्होंने लिखा, गोल मेज कॉन्फ्रेंस और राजनेताओं की ढीली बातों से उपजी दुश्वारियों का सबसे बुरा हिस्सा यह है कि भारत में जो कुछ भी किया जाना है, बल्कि जिसके आधार पर आगे बढ़ा जाना है, उसके बारे में सबको पता है, या फिर ये सबसे व्यापक बदलाव हैं, जोकि आसन्न हैं।

इस नोट में चर्चिल ने इस चुनौती का मुकाबला करने के लिए स्पष्ट किया कि उनकी नजर में किसी भी सूरत में भारत में अनिश्चितकाल तक ब्रिटिश शासन कायम रहना चाहिए। उन्होंने शिकायत की कि 'डोमेनियन स्टेटस' शब्द का इस्तेमाल इसलिए गलत तरीके से किया गया, क्योंकि इससे गलतफहमी पैदा होती है। चर्चिल ने लिखा कि 'सम्राट के उच्च सेवकों, चाहे वे मंत्री, वायसराय या गवर्नर हों, उनके द्वारा इस शब्द का इस्तेमाल या फिर इसके आधार पर उम्मीद जगाना गलत है, जब तक कि वे एक निश्चित समय में इसके हकीकत में बदलने के बारे में आश्वस्त न हों। यदि उनका विचार है कि भारत सौ या दो सौ साल में कनाडा या ऑस्ट्रेलिया की तरह स्वशासित इकाई बन सकता है और यदि उनका आशय यही है, तो भी उन्हें इस शब्द का इस्तेमाल यह स्पष्ट किए बिना नहीं करना चाहिए कि इसे ऐसे समय हासिल नहीं किया जा सकता, जब अभी मौजूद लोग इसे देख सकें।'

चर्चिल ने इसके बाद दावा किया, 'भारत न एक देश है या राष्ट्र है; यह एक महाद्वीप है, जिसमें कई देश बसे हुए हैं। भारत के समानांतर यूरोप है। लेकिन यूरोप एक राजनीतिक इकाई नहीं है। यह एक भौगोलिक अमूर्तता है। शताब्दियों के विकास के बावजूद कोई भी न तो यूरोप की राय जाहिर कर सकता है और न ही उसकी ओर से बोलने का दावा कर सकता है। लेकिन भारत में जातिगत और धार्मिक विभाजन बड़ी संख्या में है और यूरोप की तुलना में इसकी जड़ें वहां गहरी हैं। भारत में जैसी एकता और भावना व्याप्त है, वह पूरी तरह से केंद्रीकृत भारत की ब्रिटिश सरकार के कारण उपजी है... इसलिए मेरे लिए यह कल्पना करना असंभव-सा लगता है कि किसी भी विषय पर कोई समझौता भारत के साथ समग्रता में हो सकता है।'

1932 में लिखते हुए चर्चिल कल्पना कर रहे थे कि भारत कभी भी एक स्वतंत्र देश नहीं हो सकता, जिसे लोग देख सकें। यह देखते हुए कि वह इस संबंध में कितने प्रतिक्रियावादी थे, मैं उनके दृष्टिकोण का प्रतिकार करूंगा, भारतीय राष्ट्रवादियों के दृष्टिकोणों से नहीं, बल्कि उनकी ही पार्टी के उनके सहयोगी और भारत के पूर्व वायसराय लार्ड इरविन के दृष्टिकोण से। उसी वर्ष 1932 में इरविन ने टोरंटो विश्वविद्यालय में एक व्याख्यान दिया था, जिसमें उन्होंने कहा कि हाल ही में मिस्र, चीन, फारस, अफगानिस्तान और जापान में जनांदोलन उभरे हैं, जो कि जोश से भरी राष्ट्रवादी आकांक्षाओं को आकार दे रहे हैं। इसलिए, जैसा कि इरविन ने कहा, 'किसी भी रूप में यह नहीं कहा जा सकता कि भारत उसके आसपास जो कुछ घट रहा है, उससे अप्रभावित रहेगा और यदि हम यह स्वीकार नहीं करते कि भारतीय राष्ट्रवाद मजबूत है तथा और मजबूत होगा, तो हम खुद को झांसा दे रहे हैं।'

इसके बाद इरविन ने उस समय के प्रमुख भारतीय नेताओं पर बात की। उन्होंने स्वीकार किया, 'कोई व्यक्ति किसी आंदोलन को विभिन्न रूपों में किस तरह जीवंत कर सकता है, श्री गांधी इसकी मिसाल हैं, जो कि संत और राजनेता का मिश्रण हैं और राष्ट्रीय स्वायत्तता के संघर्ष का लंबे समय से प्रतीक बने हुए हैं।' इसके आगे उन्होंने कहा, 'महात्मा हिंदू धर्म की गहरी शक्तियों की प्रार्थना करते हैं, जिनके बारे में पश्चिम के हम लोग कम जानते हैं और अपने अनुयायियों को ऐसे रास्ते पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं, जिन पर हम शायद ही चल सकते हैं।' उन्होंने कहा, 'अपने विचारों और राष्ट्रीय स्वतंत्रता के आदर्श को हासिल करने के लिए गांधी कोई भी सर्वोच्च बलिदान देने के लिए तैयार हैं। अपने हिंदू अनुयायियों पर उनका प्रभाव किसी भी अन्य से अलग तरह का है और जब जब वह आह्वान करते हैं, उतनी ही बड़ी संख्या में लोग उनसे जुड़ते चले जाते हैं।'

गांधी को लेकर यह दृष्टिकोण जरा सीमित है। अपनी व्यक्तिगत आस्था में हिंदू होने के बावजूद गांधी अपनी राजनीति में सभी क्षेत्रों और धर्मों के भारतीयों को प्रतिनिधित्व देने का प्रयास करते थे। इसे अलग रखकर देखें तो इरविन ने भारतीय दावों और आकांक्षाओं के प्रति सहानुभूति वाला नजरिया दिखाया था। वह 1932 में ही जान गए थे कि भारतीय राष्ट्रवाद मजबूत है तथा और मजबूत होगा और वह इसका स्वागत करने के लिए तैयार थे।

जबकि विंस्टन चर्चिल इसके लिए तैयार नहीं थे। वह निर्लज्ज साम्राज्यवादी थे, जो यह मानता था कि भारत कभी एक राष्ट्र नहीं बन सकता और भारतीयों को हमेशा अंग्रेजों का गुलाम रहना चाहिए। जहां तक हिटलर और नाजियों की बात है, तो चर्चिल एकदम सही थे। लेकिन गांधी और भारत को लेकर वह पूरी तरह से गलत थे। घर में तो वह राष्ट्रीय स्वतंत्रता का बचाव करते थे और विदेश में नस्लीय भेदभाव को बढ़ावा देते थे, यही विंस्टन चर्चिल की राजनीति का अंतरविरोध था।

अनुच्छेद 370 पर विचार का समय

जम्मू-कश्मीर के भारतीय नागरिकों की रक्षा करने और भारत को उग्रवाद से बचाने का एक ही रास्ता है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 में कम से कम संशोधन करने का संसद को अधिकार मिले।

फाइल फोटो

पूरा विश्व का प्रेस/मीडिया कश्मीर में आग भरी उत्तेजक कहानियां प्रकाशित कर रहा है। यह वास्तविकता है कि 26 अक्तूबर, 1947 को जम्मू-कश्मीर के शासक ने भारत संघ के साथ जम्मू-कश्मीर का विलय किया था। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि प्रसिद्ध लेखकों, न्यायविदों और राजनेताओं ने जम्मू-कश्मीर राज्य की पिछली ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की खोज करने की कोशिश नहीं की। जम्मू-कश्मीर के पाक-अधिकृत क्षेत्र (पीओके) की 4,500 वर्ग मील भूमि पर पाकिस्तान का अवैध कब्जा चल रहा है। इसके अतिरिक्त पाकिस्तान ने 13 अगस्त, 1948 में संयुक्त राष्ट्र के युद्धविराम प्रस्ताव पर हस्ताक्षर किए और उसके बाद गिलगित-बाल्टिस्तान की लगभग 32,000 वर्ग मील भूमि पर आक्रमण करके कब्जा कर लिया। इसके अलावा गिलगित क्षेत्र में लगभग 5,500 वर्ग मील भूमि को 1963 में पाकिस्तान ने चीन को 99 साल के लिए लीज पर दे दी और यह कब्जा गिलगित पर 13 अगस्त, 1948 के संयुक्त राष्ट्र के उस प्रस्ताव का उल्लंघन था, जिस पर पाकिस्तान ने संयुक्त राष्ट्र के सामने हलफनामा दिया था कि वह उसके आदेश की अवहेलना नहीं करेगा। गिलगित-बाल्टिस्तान आज तक पाकिस्तान के कब्जे में है।

भीम सिंह

यहां यह जानना आवश्यक है कि पाकिस्तान ने 1948 में संयुक्त राष्ट्र के प्रस्तावों पर हस्ताक्षर करने के बाद भारत पर हमला किया था,जिसकी पूरी दुनिया के साथ-साथ संयुक्त राष्ट्र ने भी भर्त्सना की थी। यह भी जानना जरूरी है कि यह पाकिस्तान ही था, भारत नहीं, जिसने संयुक्त राष्ट्र प्रस्तावों का उल्लंघन करके गैरकानूनी कब्जा किया।

संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करने के बाद पाकिस्तान ने गिलगित-बाल्टिस्तान पर हमला करके हथिया लिया, जो जम्मू-कश्मीर का क्षेत्रीय भाग था। 1957 में भारत के प्रतिनिधि कृष्ण मेनन ने अपने आठ घंटे से अधिक के ऐतिहासिक भाषण के दौरान सुरक्षा परिषद के पटल पर इन प्रस्तावों के संबंध में पाकिस्तान की साजिशों को उजागर किया था। यह केवल कृष्णा मेनन के भाषण के कारण हुआ था, जिससे पाकिस्तान की साजिशों का पर्दाफाश हो सका। इसके बाद कुछ वर्षों तक जम्मू-कश्मीर में शांति रही।

जम्मू-कश्मीर के महाराजा हरि सिंह की कार्रवाई भारत सरकार अधिनियम, 1935 के तहत थी, जो अंतरराष्ट्रीय कानून के अनुसार भी थी।

आज प्रश्न यह है कि भारत को जम्मू-कश्मीर के बारे में क्या कदम उठना चाहिए, जिसे 1947 में वहां के महाराजा ने ब्रिटिश संसद के बनाए हुए कानून के तहत भारत के साथ जोड़ दिया था। यह भी बात साफ है कि संयुक्त राष्ट्र प्रस्ताव जो जम्मू-कश्मीर जनमत संग्रह कराने के हित में था, उसे पाकिस्तान ने खुद खत्म कर दिया है।

जम्मू-कश्मीर के भारतीय नागरिकों की रक्षा करने और भारत को उग्रवाद से बचाने का एक ही रास्ता है कि भारतीय संविधान के अनुच्छेद 370 में कम से कम संशोधन करने का संसद को अधिकार मिले। अनुच्छेद 370 के तहत संसद को तीन विषयों रक्षा, विदेशी मामले, संचार और संबद्ध मामले पर भी कानून बनाने का अधिकार प्राप्त नहीं है, जो तीन विषय 26 अक्तूबर, 1947 को जम्मू-कश्मीर के तत्कालीन महाराजा हरि सिंह ने विलयपत्र पर हस्ताक्षर करके भारत को सौंपे थे। ये अधिकार भारतीय संसद के हैं, जो तुरंत संसद को सौंपने होंगे। भारत के राष्ट्रपति को अनुच्छेद 370 में जो आज तक अस्थायी है, संशोधन या कोई भी संशोधन करने का सांविधानिक अधिकार है। यही एक रास्ता है, जिससे भारत का तिरंगा कन्याकुमारी से कश्मीर तक बिना किसी रुकावट के फहराया जा सकता है। 70 सालों से अनुच्छेद 370 अस्थायी प्रावधान है और इसमें कोई भी संशोधन करने से भारतीय संसद अपने पर स्वयं रोक लगाती है।

यह खेद की बात है कि जम्मू-कश्मीर के भारतीय नागरिक, जिसमें लेखक भी शामिल है, उन्हें आज तक मौलिक अधिकार प्राप्त नहीं हो सके हैं। जम्मू-कश्मीर में भारतीय दंड संहिता भी लागू नहीं है, वहां पर रनवीर पीनल कोड लागू होता है। जम्मू-कश्मीर में मानवाधिकारों के नियंत्रण के लिए जन सुरक्षा कानून बनाया हुआ है, जिस कानून के तहत किसी भी व्यक्ति को दो वर्ष तक बिना मुकदमा चलाए जेल में रखा जा सकता है। यह लेखक 1977 में कांग्रेस का विधायक होने के बावजूद जम्मू-कश्मीर के जनसुरक्षा कानून के तहत तीन साल तक जेलों में रहा है और बिना मुकदमा चलाए आठ साल से ज्यादा जम्मू-कश्मीर की जेलों का मजा चखा है। भारतीय सुप्रीम कोर्ट ने लगभग 25 बार इस लेखक को जम्मू-कश्मीर की जेलों से रिहा करने के आदेश दिए।

कश्मीर में आज भी दो हजार छात्र, युवा और मासूम लोग जेलों में बंद हैं। जिसका कारण सिर्फ यह है कि भारत के संविधान में दिए गए मानवाधिकार जम्मू-कश्मीर में लागू नहीं हैं। जब तक भारतीय संविधान जम्मू-कश्मीर में पूरी तरह लागू नहीं होगा, भारत का झंडा कन्याकुमारी से कश्मीर तक नहीं लहराएगा और हर व्यक्ति को न्याय-अधिकार नहीं मिलेगा, तब तक जम्मू-कश्मीर में शांति असंभव है।

लेखक, पैंथर्स पार्टी के अध्यक्ष हैं